LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

|| श्रीहरिः ||

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

गीता परिवार
|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग

6/6 (श्लोक 58-78), रविवार, 22 फ़रवरी 2026

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/NQKpnb_bMTU

सम्पूर्ण समर्पण से भगवत् प्राप्ति

आज के पावन सत्र का शुभारम्भ परमात्मा की वन्दना, गुरु-चरणों की वन्दना, जन्मभूमि की वन्दना तथा श्रीहनुमान चालीसा के पाठ के साथ हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता का सार रूप अट्ठारहवाँ अध्याय जिसमें समग्र गीता समाई हुई है। भगवद्गीता का कलश अध्याय हम देख रहे हैं और इसमें हमने देखा कि सत्त्व, रज तथा तम- तीन गुणों के कारण बनी हुई यह सारी प्रकृति, जिसके कारण हम सब के शरीर बने हुए हैं। हमारा मन, बुद्धि ये सब तीन गुणों से ही प्रभावित है। यह तीन गुणों वाले ही हैं। इसमें जो गुण प्रभावी रहता है, उसके अनुसार उस व्यक्ति का स्वभाव बनता जाता है। उसी के कारण चार प्रमुख प्रकार के स्वभावों के लोग इस धरती पर हैं। जिनको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इस नाम से हम जानते हैं। हर एक का कार्य उसके गुणों के अनुसार किस प्रकार से अलग-अलग होता है। यह भी हमने देखा और अन्त में श्रीभगवान् ने यह बात बताई कि तुम कौन हो?

तुम्हारा वर्ण कौन सा है?

तुम्हारा स्वभाव कैसा है?

यह सारी बातें छोड़ दो। अपना जो भी कर्तव्य कर्म है, वो कर्म करते हुए तुम मुझे कैसे प्राप्त कर सकते हो?

परमात्मा को कैसे प्राप्त कर सकते हो?

सच्चिदानन्द को कैसे प्राप्त कर सकते हो?

यह जानो और यह बताकर श्रीभगवान् ने सारा कर्म योग एक बार फिर से अर्जुन को बता दिया।

यत: प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततं।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिध्दिम विन्दति मानवः।।47।।

उस परमात्मा की पूजा कैसे करनी है?

स्वकर्मणा- अपने कर्मों से, अपने कर्तव्यों का पालन करते हुये, उसके लिए मैं कर रहा हूँ; इस भाव से करते हुए उसको अर्पण यदि हम करते जाएँ तो उसके सबसे अच्छी पूजा होती है और फिर हमारा कर्तव्य-कर्म अच्छा नहीं है, बहुत छोटा काम है, हम तो बड़े बड़े कार्य नहीं कर सकते, हमें ज्ञान नहीं है। यह सारी बातें सोचने की आवश्यकता ही नहीं है। जो भी हमारा कर्तव्य कर्म है, वही हमारे लिए कल्याणकारी है, वही हमारे लिए हितकारी है।

श्रेयांस्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात

अच्छे से आचरण में लाए हुआ, **स्वधर्म-स्वकर्म** ये दूसरे के बड़े-बड़े कार्यों से भी कार्य अधिक अच्छा है इसलिए श्रीभगवान् अर्जुन को बताते हैं-

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमापि न त्यजेत

ऐसा कहकर श्रीभगवान् ने सारा कर्म योग ही मानो चार-पाँच श्लोकों में समाहित कर दिया। ये कर्म योग के आचरण से परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग। इसी प्रकार, ज्ञान मार्ग से परमात्मा की प्राप्ति कैसे हो सकती है, यह बात भी श्रीभगवान् ने बताई-

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः

एक ज्ञान योग के मार्ग पर चलने के लिए, साङ्ख्य के मार्ग पर चलने के लिए या संन्यास मार्ग पर चलने के लिए किन बातों की आवश्यकता है, क्या-क्या योग्यताएँ हैं, ये जब तक हमारे साथ नहीं हैं, तब तक हम संन्यास मार्ग से नहीं चल सकते किन्तु संन्यास मार्ग पर जाने के लिए क्या-क्या आवश्यक है- ये बातें जानना तो आवश्यक है इसलिए श्रीभगवान् ने ये सारी बातें बतायीं।

बुद्ध्या विशुद्ध्या युक्तो धृत्यात्मानन नियम्यच

शुद्ध बुद्धि, धैर्ययुक्त बुद्धि, स्वयं पर नियन्त्रण, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध- इन आदि विषयों से दूर रहना आदि सारी बातें बतायीं।

विविक्तसेवी लघ्वाशी

बहुत कम आहार लेने वाला- ये सारी बातें होने के पश्चात् जो नित्य ध्यान योग में रह सकता है, वैराग्य के साथ रह सकता है, अहङ्कार का जो त्याग करता है, वह संन्यासी बनने के लिए योग्य हो जाता है और वह ध्यान के मार्ग से परमात्मा की प्राप्ति कर लेता है और

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कान्नक्षति

फिर उसको स्वयं के लिए कोई अपेक्षा-इच्छाएं नहीं रहतीं, उसकी दृष्टि सम हो जाती है,

समः सर्वेषु भूतेषु

ऐसी दृष्टि जब उसकी हो जाती है तब श्रीभगवान् कहते हैं-

मद्भक्तिन लभते परां

मेरी परम भक्ति की प्राप्ति उसको होती है अर्थात् हमारा प्राप्तव्य क्या है?

परमात्मा की प्राप्ति- ये तो प्राप्तव्य है किन्तु पहले परमात्मा की भक्ति की प्राप्ति।

'भक्ति से परमात्मा प्राप्त हो जाएँगे'- ऐसा कहने के स्थान पर परमात्मा की भक्ति ही प्राप्त हो जाए। भक्ति एक बार प्राप्त हो गई तो परमात्मा ही प्राप्त हो गए। ऐसा है इसलिए भक्ति से परमात्मा की भक्ति ही प्राप्तव्य है। भक्ति को ही प्राप्त करना है और भक्ति प्राप्त करने के लिए कर्मयोग भी बताया, ज्ञानयोग भी बताया और ऐसी भक्ति प्राप्त होने के पश्चात क्या होता है?

श्रीभगवान् कहते हैं कि ऐसी भक्ति प्राप्त होने से मेरा ज्ञान अच्छे से होता है।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्वतः

तत्त्वतः उसको जानना, उसके भाव सहित उस परमात्मा को जानना- ये सारी बातें हमने पिछले सत्र में देखीं और उसके लिए

चेतसा सर्वकर्माणी मयी सन्न्यस मत्पराः।

बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव।।57।।

इस श्लोक में तीनों योग समाहित हो गए हैं- अपने चित्त, बुद्धि तथा मन से सारे कर्मों को श्रीभगवान् को अर्पण कर देने से और समत्व की बुद्धि धारण करके- यह ज्ञानयोग हो गया और

मच्चित्तः सततं भव- भक्ति योग हो गया।

अपना चित्त सदा परमात्मा में रहना यह भक्ति है, बुद्धि योग का आश्रय यानी समत्व की बुद्धि धारण करना, समत्व की बुद्धि से रहना, समत्व की दृष्टि से सर्वत्र देखना- ये ज्ञान योग है और

चेतसा सर्वकर्माणी मयी सन्न्यस्य- ये कर्म योग है।

इस प्रकार से **सततम् भव**- इन तीनों योगों का आचरण अर्जुन, तुम सर्वदा करते रहो। सर्वदा योग करते रहो और ऐसा होने से जब तुम्हारा चित्त मुझ में हो जाएगा।

18.58

मच्चित्तः(स्) सर्वदुर्गाणि, मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्, न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि॥18.58॥

मुझमें चित्तवाला होकर (तू) मेरी कृपा से सम्पूर्ण विघ्नों को तर जायगा और यदि तू अहंकार के कारण (मेरी बात) नहीं सुनेगा (तो) तेरा पतन हो जायगा।

विवेचन- सारे दुर्ग अर्थात् सारे सङ्कटों को तुम पार कर लोगे अर्जुन, यदि तुम्हारा चित्त मुझमें लगा रहेगा। अपना चित्त, अपना ध्येय परमात्मा में लगा हुआ है तो बीच में आने वाले छोटे-बड़े सङ्कटों से मनुष्य हिलता नहीं है। अपने ध्येय की ओर देखता रहता है।

दिव्य ध्येय की ओर तपस्वी जीवन भर अभि चल चलता

वो दिव्य ध्येय की ओर देखते हुए, बीच में आने वाले सङ्कटों को पार कर जाता है किन्तु यदि तुम अहङ्कार से यह कहोगे कि मैं यह युद्ध नहीं करूँगा- तो यह होने वाला नहीं है। परमात्मा के लिए सब कुछ करना है। अपना मन उसमें लगाए रखना है और सारे कार्य इस प्रकार से करते जाना है।

हे अर्जुन! अहङ्कारवश तुम यदि कहोगे कि मैं ये युद्ध भी नहीं करूँगा तो यह सम्भव नहीं है।

18.59

यदहङ्कारमाश्रित्य, न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते, प्रकृतिस्त्वां (न्) नियोक्ष्यति॥18.59॥

अहंकार का आश्रय लेकर (तू) जो ऐसा मान रहा (है) कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, तेरा यह निश्चय मिथ्या (झूठा) है; (क्योंकि) (तेरी) क्षात्र-प्रकृति तुझे युद्ध में लगा देगी।

विवेचन- यदि अहङ्कार से युक्त होकर तुम कहोगे कि मैं युद्ध नहीं करूँगा। जो होना है, होने दो। मैं तो युद्ध नहीं करूँगा तो

श्रीभगवान् कहते हैं कि तुम्हारा यह व्यवसाय मिथ्या है, तुम्हारा यह निश्चय मिथ्या है अर्थात् झूठा है क्योंकि तुम्हारा स्वभाव ऐसा है कि वह तुम्हें बैठने नहीं देगा। वो तुम्हें युद्ध करने के लिए प्रवृत्त करने वाला है। तुम एक क्षत्रिय हो। क्षात्र धर्म है तुम्हारा। तुम्हारा स्वभाव तुम्हें उस युद्ध से दूर नहीं जाने देगा।

प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति- यह प्रकृति तुमसे करवाएगी।

तुम्हारा स्वभाव तुमसे वही करवाएगा क्योंकि हम सब लोग इस स्वभाव के, इस प्रकृति के बन्धन में अभी भी बँधे हुए हैं। अभी भी प्रकृति के बन्धन से हम छूटे नहीं है। प्रकृति के बन्धन से छूटने के लिए क्या करना है?

यह आगे के श्लोकों में हमें देखना है।

18.60

स्वभावजेन कौन्तेय, निबद्धः(स्) स्वेन कर्मणा।
कर्तुं(न्) नेच्छसियन्मोहात्, करिष्यस्यवशोऽपि तत्॥18.60॥

हे कुन्तीनन्दन ! अपने स्वभाव-जन्य कर्म से बँधा हुआ (तू) मोह के कारण जिस युद्ध को नहीं करना चाहता, उसको (तू) (क्षात्र-प्रकृति के) परवश होकर करेगा।

विवेचन- अपने स्वभाव से निर्मित होने वाले स्वाभाविक कर्म ही मनुष्य करता है, वह निबद्ध है, वह उस बन्धन में है। इस बन्धन से छूटना इतना आसान नहीं है। मनुष्य अपने स्वकर्मों में, कर्तव्य-कर्मों में, अपनी प्रकृति तथा अपने स्वभाव के कारण उन कर्मों के बन्धन में है।
वो कर्म हमें करने ही पड़ते हैं। जिस प्रकार से श्वास लेने के लिए हम बद्ध हैं। हमें श्वास लेना ही पड़ेगा। जीवित रहना है तो श्वास लेना छोड़ सकते हैं क्या?

हमारा कर्म हमें करना ही पड़ेगा। भोजन हमें करना ही पड़ेगा। विश्राम हमें लेना ही पड़ेगा किन्तु साथ-साथ उसके जो स्वाभाविक कर्तव्य कर्म हैं, वह वो करता है। एक क्षत्रिय के लिए युद्ध उसका स्वाभाविक कर्म है। देश की रक्षा ये उसका स्वाभाविक कर्म है।

वैश्य के कर्म किस प्रकार के हैं?

ब्राह्मण के कर्म किस प्रकार के हैं?

शूद्र के कर्म किस प्रकार के हैं?

ये हमने पहले विस्तार से पढ़ा है। तो अपना जो स्वधर्म है, अपना जो स्वकर्तव्य है, वही करना है। तुम मोह के कारण कह रहे हो कि मैं ये युद्ध नहीं करूँगा। यह तुम्हें जो मोह हो गया है, अज्ञान हो गया है, यह अज्ञान के कारण जो तुम कह रहे हो कि मैं यह युद्ध कर नहीं करूँगा, वह तुम अवश्य होकर करोगे। ये तुम्हारी प्रकृति, तुम्हारा स्वभाव तुम्हें खींच कर लाएगा और तुमसे यह करवाएगा। यह तुम्हें करना ही है। जब करना ही है तो श्रीभगवान् के लिए क्यों नहीं करना?

जो कर्तव्य हमें करने हैं, उनके लिये यह भाव रखना कि वे कर्तव्य करने के लिए श्रीभगवान् ने मुझे चुना है। यह कर्म मुझे करना पड़ रहा है अथवा यह कर्तव्य मुझे करना पड़ रहा है- यह भाव नहीं रखना। ऐसा भाव जब आ जाता है तो यह बन्धन हो गया किन्तु बन्धन से मुक्त होना है तो क्या?

यह कार्य करने के लिए श्रीभगवान् ने मुझे चुना है। यह कार्य करने का अवसर श्रीभगवान् ने मुझे दिया है। यह भाव रखते हुए उसके लिए करना है किन्तु अज्ञानवश यदि तुम बोलोगे कि यह मैं करूँगा ही नहीं तो यह सम्भव नहीं है।

अर्जुन! यह युद्ध तो तुम्हें करना ही पड़ेगा। जितना आवश्यक हमें श्वास-प्रश्वास करना है, उतना ही अपने स्वभाव कर्म को करना हमारे लिये आवश्यक है।

18.61

ईश्वरः(स्) सर्वभूतानां(म्), हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि, यन्त्रारूढानि मायया॥18.61॥

हे अर्जुन ! ईश्वर सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में रहता है (और) अपनी माया से शरीररूपी यन्त्र पर आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को (उनके स्वभाव के अनुसार) भ्रमण कराता रहता है।

विवेचन- ईश्वर कहाँ है?
हे अर्जुन! उसका उत्तर एक ही है वो कहाँ नहीं है वो सर्वत्र है।

सर्वत्र है, तो हम में भी है। हमारे अन्तरङ्ग में है, हमारे चित्त में है,हमारे भीतर है। कहने के लिए भगवान् ने शब्द प्रयोग किया हृदय में है। हमारे हृदय में ही तो है बैठा हुआ है। हम कुछ चला नहीं ले रहे किन्तु हमारा हृदय चल रहा है, कौन चला रहा है उसे?
ईश्वर सर्वभूत नाम रुष्ट- हे अर्जुन, सभी के हृदय में वह बसा हुआ है और वह हमें भ्रमित करते हैं अपने जादू से।

उनके जादू के प्रभाव में हम हैं।

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्ररूढ़ानि मायया- ये शरीर रूपी यन्त्र हमें प्राप्त हुआ है। यह यन्त्र ही है न, यन्त्र जैसा ही तो कार्य करता है। शरीर एक यन्त्र है और इस यन्त्र के भीतर वो यन्त्री बैठा हुआ है वो ईश्वर बैठे हुए हैं। प्रकृति को माया जाल भी कहते हैं, जादू भी कहते हैं। किसकी माया है?

माया भी परमात्मा की है उसी का जादू है। उसी के प्रभाव में हम हैं, इसलिए हमें यह सब कुछ सही लग रहा है। वो परमात्मा दिखाई नहीं देता किन्तु उसकी माया हमें सर्वत्र दिखाई देती है। उस माया के पीछे छुपे हुए उस परमात्मा को प्राप्त करना है तो किसकी शरण में जाना होगा?
परमात्मा की शरण में जाना होगा।

18.62

तमेव शरणं(ङ्) गच्छ, सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां(म्) शान्तिं(म्), स्थानं(म्) प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥18.62॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन ! (तू) सर्वभाव से उस ईश्वर की ही शरण में चला जा। उसकी कृपा से (तू) परमशान्ति (संसार से सर्वथा उपरति) को और अविनाशी परमपद को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन - श्रीभगवान् कहते हैं,
तमेव शरण गच्छ- किसकी शरण में जाओ?
उस परमात्मा की ही शरण में जाओ। यहाँ पर 'त्वम् शरणम गच्छ' नहीं कहा, 'तमेव' उस की शरण में जाओ।

उनका जादू सीखना है। उनकी माया से बाहर निकलना है, उनका दर्शन करना है। उन परमात्मा को यदि प्राप्त करना है और उनके साथ यदि एकरूपता हम चाहते हैं, उनके आनन्द को यदि हमें प्राप्त करना है, सच्चिदानन्द को प्राप्त करना है तो उस परमात्मा की ही शरण में जाओ।

वही दिला सकता है, अन्य कोई नहीं दिला सकता।
जब सङ्कट आता है, तब उनकी याद आती है, कुछ हमें चाहिए, तब उनका स्मरण आता है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि ऐसे ही उनकी शरण में नहीं जाना है तो
सर्वभावेन परिपूर्ण शरणागति सम्पूर्ण प्रपत्ति- प्रपत्ति अर्थात् शरणागति उन्हीं की शरण में रहना, उन्हीं के लिए कार्य करते रहना है, जो कार्य उन्होंने हमें सौंपा है। जो हमारा स्वाभाविक कर्म है वो स्वाभाविक कर्म करते रहना है किन्तु उस के लिए उनकी शरण में जाकर करना है। उसने मुझे सौंपा है, इस भाव से करना है।

सर्वभावेन भारत- हे भारत!, भरतवंशीय हे अर्जुन! इसलिए भारत शब्द प्रयोग किया है। हे भारत! तुम उनकी शरण में जाओ।

सर्वभावेन- पूर्ण रूप से उनकी शरण में जाओ। उनके प्रसाद स्वरूप तुम्हें क्या प्राप्त होगा?
परम शान्ति की प्राप्ति होगी।
मनुष्य को परम शान्ति कब मिल सकती है?
(It is not when he earns more, it is not when he spends more. It is when he needs no more)
अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। मुझे साक्षात् परमात्मा मिल गए। अब मुझे इससे ऊपर और कुछ नहीं चाहिए। ये जब मनुष्य प्राप्त करता है तब उसको परम शान्ति प्राप्त होती है।

तत प्रसादात् का अर्थ क्या है?
अन्तकरण की प्रसन्नता इसको कहते हैं प्रसाद।
अन्तःकरण की प्रसन्नता जब मनुष्य को प्राप्त हो जाती है तब वह शान्त हो जाता है और यही श्रीभगवान् का प्रसाद है। परम शान्ति की प्राप्ति होती है। शाश्वत स्थान कौन सा है?
जो कभी नष्ट नहीं होता, उस अवस्था को तुम प्राप्त कर लोगे अर्थात् तुम अपने स्वयं को जानोगे और यह शरीर मैं नहीं हूँ, मैं शुद्ध आत्म-स्वरूप हूँ, यह बोध जब तुम्हें हो जाएगा तब तुम्हें पता चलेगा मैं तो अजर हूँ, अमर हूँ, अजन्मा हूँ। मैं चिरन्तन हूँ, मैं शाश्वत हूँ, मैं नित्य हूँ। मैं निरन्तर हूँ। मैं शिव हूँ। यह अनुभूति तुम्हें तब होगी।

मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तानि नाहं न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योम भूमिर्न तेजो न वायुः चिदानन्दरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम् ॥
अर्थ: मैं न मन हूँ, न बुद्धि, न अहङ्कार, न चित्त। मैं न कान हूँ, न जीभ, न नाक, न आँखें। मैं न आकाश हूँ, न पृथ्वी, न अग्नि, न वायु। पञ्च महाभूत नहीं हूँ। मैं ज्ञान और आनन्द का स्वरूप हूँ, मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ। मैं कौन हूँ? चिदानन्द रूप शिवोहम् शिवोहम्।

उस जीव को यह अनुभूति तब हो जाती है जब वह उस परमात्मा की शरण में जाकर परिपूर्ण रूप से शरणगत हो जाता है। तब वह भी वो हो जाता है। हमारा सारे कार्य परमात्मा के हो जाते हैं। तब हम भी परमात्मा स्वरूप हो जाएँगे। सारा गोपनीय ज्ञान श्रीभगवान् ने अर्जुन को बता दिया। जीवन में कितना भी बड़ा लक्ष्य, कितना भी बड़ा ध्येय प्राप्त करना है तो उस ध्येय को परमात्मा के स्वरूप में देखिए। मैं ध्येय कह रहा हूँ; कामना नहीं, इच्छा नहीं; कामना,इच्छा- ये स्वार्थ सीमित होती है। स्वार्थ से बन्धन में रहती है। ध्येय विराट-विशाल रहता है। जब कामना बहुत बड़ी हो जाती है तब वो ध्येय कहलाती है। स्वयं तक सीमित रहती है तब वो कामना रहती है। मेरी मातृभूमि को स्वतन्त्रता देवी के रूप में मुझे देखना है। भारत माता को स्वतन्त्रता प्राप्त करवा देना है। ऐसी कामना जब हो गई तो वो कामना नहीं रही, वो ध्येय बन गया। स्वातन्त्रवीर सावरकर कहते हैं- **स्वतन्त्रते भगवती।**

उनके लिए स्वतन्त्रता ही भगवती परमात्मा स्वरूपिणी हो गई। स्वतन्त्रता देवी, वैसे ही हमारी भारत माता को विश्व गुरु पद पर बैठा हुआ देखना है- यह ध्येय लेकर यदि हम चलेंगे तो वही ध्येय ही परमात्मा है। वो ध्येय की प्राप्ति तब होगी, जब हम उस ध्येय के लिए समर्पित हो जाएँगे। अपना सारा जीवन उसके लिए समर्पित करना।

श्रीभगवान् अर्जुन की ओर देख रहे हैं। अर्जुन को कहते हैं जो बताना था अर्जुन, सारा तुम्हें बता दिया। सारा गोपनीय जो जितना मेरे हृदय में है वो सारा हृदय का, ज्ञान का भण्डार तुम्हारे सामने खोल दिया।

18.63

इति ते ज्ञानमाख्यातं(ङ्), गुह्याद्गुह्यतरं(म्) मया।
विमृश्यैतदशेषेण, यथेच्छसि तथा कुरु॥18.63॥

यह गुह्य से भी गुह्यतर (शरणागति रूप) ज्ञान मैंने तुझे कह दिया। (अब तू) इस पर अच्छी तरह से विचार करके जैसा चाहता है, वैसा कर।

विवेचन- श्रीमद्भगवद्गीता की ये सबसे बड़ी बात यहाँ श्रीभगवान् कहते हैं इति अर्थात् अब पूर्ण हो गया।

जो बताना था यहाँ पर पूर्ण हो गया इति हम अध्याय के अन्त में कहते हैं न **इति श्रीमद्भगवद्गीतासु** अर्थात् इस प्रकार से मैंने तुम्हें सारा ज्ञान बताया।
कैसा ज्ञान बताया?
गुह्याद्गुह्यतरम् गुह्य अर्थात् गोपनीय से भी बड़ी गोपनीय बात तुम्हें मैंने बता दी, अपने हृदय की सारी बातें बता दीं। यह बात जो मैंने तुम्हें बतायी है, इस पर विमर्श करो, विचार करो। अच्छे से विचार करो। अच्छे से विचार ही नहीं करना होता है तो फिर से पढ़ो। फिर से सोचो किन्तु परिपूर्ण रूप से विचार करो। आधा-अधूरा नहीं। परिपूर्ण रूप से इस पर विचार करके, फिर जो तुम्हारी इच्छा है वो करो

भगवान् अर्जुन को ऐसा नहीं कहते ऐसा ही तुम्हें करना है यही तुम करो ऐसा भी नहीं कहते ये हमारी संस्कृति की विशेषता है यह भारतीय परम्परा की विशेषता है कि यहाँ पर बाध्यता किसी के लिए नहीं है।

मेरी बात मानोगे तो ठीक है अन्यथा तुम्हारा सर तन से जुदा कर दूँगा, ऐसी बात नहीं कहते। श्रीभगवान् भी नहीं कहते। श्रीभगवान् कहते हैं कि इस पर सोच समझ कर, विचार करके फिर तुम्हारी जो इच्छा है, वह करो। हमें कर्म करने के लिए पूर्ण छूट दी गई है, अधिकार दिया है, योग्यता दी गई है। श्रीमद्भगवद्गीता का वो श्लोक याद कीजिए जो महत्वपूर्ण श्लोक कहा जाता है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते- कर्म करने का अधिकार दिया है, योग्यता दी है। उसके फल की चिन्ता मत करो। अपना कर्तव्य करना- यह अधिकार हमें दिया है।
जो तुम्हें करना है करो, अर्जुन!

यथेच्छसि तथा कुरू- जो तुम्हारी इच्छा हो वैसे करो।
श्रीभगवान् का अर्जुन पर अत्याधिक प्रेम है। श्रीभगवान् के अत्यन्त प्रिय सखा अर्जुन हैं। ऐसा हम कह सकते हैं इसलिए तो सारा गोपनीय ज्ञान खोल दिया।

अपने हृदय का जो रहस्य है, अपने हृदय की जो गोपनीय बात है, वह मनुष्य किसको बताता है? अपने अत्यन्त निकटतम मित्र को। कुछ बातें तो ऐसी होती हैं कि वो माता-पिता को भी नहीं बताएगा किन्तु अपने प्रिय सखा, प्रिय मित्र को बताता है। श्रीभगवान् ने अपना सारा गोपनीय ज्ञान अर्जुन को बता दिया और यह भी कह दिया कि जो तुम्हारी इच्छा है वो तुम अपनी इच्छा से करो किन्तु फिर से अर्जुन मैं एक बार तुम्हें बताता हूँ। फिर से एक बार सारा गुह्य, गुह्यतर और गुह्यतम अर्थात् उससे अधिक गोपनीय कुछ हो ही नहीं सकता। (Superlative degree good, better, best) वैसे गुह्य , गुहतर, गुहतम।

18.64

सर्वगुह्यतमं(म्) भूयः(श्), शृणु मे परमं(म्) वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति, ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥18.64॥

सबसे अत्यन्त गोपनीय सर्वेत्कृष्ट वचन (तू) फिर मुझसे सुन। तू मेरा अत्यन्त प्रिय है, इसलिये यह (विशेष) हित की बात (मैं) तुझे कहूँगा।

विवेचन- अर्जुन को श्रीभगवान् कहते हैं सर्व गुह्यतमम
सारी गोपनीय बातों से भी सर्वश्रेष्ठ मैं तुम्हें बता रहा हूँ। बहुत महत्वपूर्ण बात श्रीभगवान् बता रहे हैं। गीता का परम रहस्य यहाँ आता है। मेरे परम वचन इससे ऊपर और कुछ कहना नहीं है मुझे। यह वचन तुम मुझसे सुन लो। मैं तुम्हें ही बता रहा हूँ और किसी को नहीं बता रहा हूँ।

अर्जुन को निमित्त मात्र बनाकर श्रीभगवान् ने सबको बताया है, सबके लिए दिया है किन्तु सबके लिए फिर भी अभी भी नहीं है क्योंकि अट्ठारहवें अध्याय तक पहुँचने वाले, पढ़ने वाले बहुत थोड़े लोग हैं। जब तक भगवत् कृपा नहीं होती तब तक वो पढ़ने की प्रेरणा मनुष्य को नहीं मिलती इसलिए हम सारे भाग्यशाली हैं। इस बात को ध्यान में रखना कि श्रीभगवान् की गुहतम बात हम सुन रहे हैं, पढ़ रहे हैं। ये क्यों बता रहे हैं?

श्रीभगवान् कहते हैं, "तुम मेरे इष्ट मित्र हो। मेरे दृढ़ मित्र हो, पक्के मित्र हो इसलिए तुम्हें, तुम्हारे हित की बात तुम्हारे कल्याण की बात मैं बता रहा हूँ। भूय: अर्थात् फिर से अभी इसके पहले भी बताई है फिर से एक बार बताता हूँ।"

18.65

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां(न्) नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं(न्) ते, प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥18.65॥

(तू) मेरा भक्त हो जा, मुझमें मनवाला (हो जा), मेरा पूजन करने वाला (हो जा और) मुझे नमस्कार कर। (ऐसा करने से तू) मुझे ही प्राप्त हो जायगा - (यह मैं) तेरे सामने सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; (क्योंकि तू) मेरा अत्यन्त प्रिय है।

विवेचन- “मैं फिर से बता रहा हूँ”, ऐसा श्रीभगवान् ने कहा।

इसका अर्थ यह है कि यह श्लोक जैसा का वैसा पहले भी आया है। नौवें अध्याय के अन्तिम श्लोक में जब भगवद्गीता आधी हुईं तब भी श्रीभगवान् ने यही बात कही थी-

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।।

मामेवैष्यसी युक्त्वैवं आत्मानं मत्पारायण:।।३४।।

अपना मन मुझको दे दो, अर्जुन!

मनुष्य अपना मन किसको दे सकता है?

अपना हृदय किसको दे सकता है?

हिन्दी में कहते हैं कि मैंने तुमको दिल दे दिया।
दिल किसको दिया जाता है?

मन/हृदय किसको दिया जाता है?

जो अपना अत्यन्त निकट है तो श्रीभगवान् को अपना अत्यन्त निकट का मित्र बनाना है, सखा बनाना है, माता-पिता बनाना है, जो भी भाव से उसको हमको देखना है, अपना बालक उसको बनाना है तो उसको अति प्रिय बना दो।

अति प्रिय भगवान को अर्पण कर दो।

अपना मन मुझ में लगाने वाला- इसका अर्थ क्या है?

अरे मुझ पर प्रेम करो। श्रीभगवान् हम पर प्रेम करने के लिए तैयार हैं किन्तु हम उन पर प्रेम करे तो ना।

श्रीभगवान् कहते हैं "अपना मन मुझ पर लगा दो अर्थात् मुझ पर प्रेम करो।"

मद्भक्तो भव- भक्त अर्थात् उस भगवान् से चिपका हुआ/उसी से लगा हुआ।

समर्थ रामदास स्वामी ने भक्त के अर्थ को समझाने के लिए अच्छी व्याख्या की है। जो विभक्त नहीं है, वह भक्त है। विभक्त अर्थात् अलग।

जो श्रीभगवान् से कभी भिन्न होता ही नहीं हैं वो भक्त है। श्रीभगवान् से कभी अलग नहीं होना इसका अर्थ क्या?

सदैव अन्तरङ्ग में, हृदय में, चित्त में उसका चिन्तन चलता रहे। वह अपना कार्य भी अच्छे से करता रहता है किन्तु कार्य करते समय मन में अन्दर से जानता रहता है कि यह भगवत्कार्य है। ये कार्य मैं श्रीभगवान् के लिए कर रहा हूँ तो श्रीभगवान् के साथ वह अपने आप जुड़ा रहता है। वह उनका भक्त हो जाता है, उन पर प्रेम करने वाला भक्त।

तुम मेरे लिए यज्ञ-पूजा करने वाले बन जाओ, मेरी पूजा करो। श्रीभगवान् की पूजा कैसी करते हैं?

इसके पहले श्लोकों में श्रीभगवान् ने बताया है। उसे कौन सी पूजा प्रिय है?

स्वकर्म कुसुमांची वीरा पूजा केली
हो या पारा तोषा लागी

अपने स्वकर्तव्य-कर्म, उनको पूजा के रूप में अर्पण
करने वाले बन जाओ।

नमस्कार करने के लिए हम क्या करते हैं?

हम झुकते हैं, उनके चरणों में सिर रखते हैं, उसकी
शरण जाते हैं तो उसकी शरण में जाओ।

मामेकम् शरणम् व्रज- श्रीभगवान् आगे कहते हैं इसलिए उसे नमस्कार करो। ऐसा करने से क्या होगा?

मामेवैष्यसि- श्रीभगवान् कहते हैं ऐसा करने से तुम मेरे मुझे ही प्राप्त कर लोगे।

प्रतिजाने प्रियोसी मे- श्रीभगवान् कहते हैं, "मैं शपथ खाकर कह रहा हूँ अर्थात् शपथ लेकर कह रहा हूँ।" श्रीभगवान् शपथ ले रहे हैं। श्रीभगवान् शपथ-पत्र दे रहे हैं कि तुम मुझे प्राप्त कर लोगे। ये मेरा आश्वासन है। तुम अपना मन मुझे दे दो, तुम मेरे लिए कार्य करने वाले हो जाओ, तुम सदैव मेरे साथ मुझ पर प्रेम करते रहो, मेरी भक्ति करते रहो तो तुम मुझे निश्चित रूप से प्राप्त कर लोगे। ये श्रीभगवान् का परम वचन है, सर्वश्रेष्ठ वचन है और श्रीभगवान् कहते हैं ये धर्म क्या है? अधर्म क्या है? यह सही क्या है? गलत क्या है? इन सारे विचारों को छोड़ो दो। इन बातों को विचार करने की आवश्यकता नहीं। मेरे लिए कर्म करो सब कुछ ठीक हो जाएगा।

18.66

सर्वधर्मान्परित्यज्य, मामेकं(म्) शरणं(म्) व्रज।
अहं(न्) त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥18.66॥

सम्पूर्ण धर्मों का आश्रय छोड़कर (तू) केवल मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, चिन्ता मत कर।

विवेचन- सर्व धर्मान्परित्यज्य का अर्थ ये मत समझना कि सारे कर्तव्य कर्म छोड़ दो।

धर्मान्परित्यज्य का अर्थ 'कर्तव्य छोड़ दो' नहीं है
अपितु इसका अर्थ है कि 'धर्म-अधर्म की चिन्ता छोड़ दो।'

मैं यह कार्य करूँगा तो पाप लगेगा क्या?

मैं वह कार्य करूँगा तो पाप लगेगा क्या?

यह उचित है क्या?

वह अनुचित है क्या?

ये सारी बातें छोड़ दो। मेरे लिए कर्म करो।

मामेकं शरणम व्रज- मुझ एक की शरण में रहकर सारे कर्म करो। श्रीभगवान् फिर शपथ-पत्र देते हैं। फिर यहाँ पर वचन देते हैं कि मैं तुम्हें सारे पापों से मुक्त कर दूँगा। सारे दोषों से मुक्त कर दूँगा।

मा शुचः- शोक मत करो, दुःख मत करो। क्या होगा/क्या नहीं होगा?
इसकी चिन्ता मत करो। भगवत् शरण में रहकर अपने सारे कार्य उसके लिए करो तो मनुष्य अपने-आप सारे पापों से मुक्त हो जाता है।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्ष्यायिषयामि- किसी बात का पाप नहीं लगेगा। यदि श्रीभगवान् के अनुसन्धान में रहते हुए सारे कार्य करते जाएँगे तो उसमें कुछ दोष भी होगा तो भी उस दोष का भी पाप नहीं लगेगा श्रीभगवान के आशीर्वाद के हस्त दो प्रकार के होते हैं-

एक होता है वरद हस्त- जो वर दिया जाता है इस प्रकार से रखते हैं तो उसको कहते हैं वरद हस्त और एक होता है अभय हस्त।

पैसठवें श्लोक में श्रीभगवान् ने अर्जुन को यह वर दिया है-

मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोसि मे

"तुम मुझे प्राप्त कर लोगे"- ये वर दिया है, आशीर्वाद दिया है, यह वरद हस्त है और

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्ष्यायिषयामि-
ये अभय हस्त है। अभय दिया है। तुम पाप-पुण्य की चिन्ता मत करो। मेरे अनुसन्धान में कार्य करते जाओ। पाप-पुण्य के विचारों से मुक्त हो जाओगे। तुम्हें पाप-पुण्य कुछ नहीं लगेगा। तुम मुझे प्राप्त कर लोगे किन्तु श्रीभगवान् यहाँ अर्जुन को सावधान कर रहे हैं। ये किसी को भी मत बताना। मैंने जो तुम्हें बताया हुआ रहस्य है न वो किसी को भी मत बताना। जिसकी इच्छा होगी वही अपने आप सुनने के लिए पढ़ने के लिए आएगा। ये किसी को भी मत सुनाना।

18.67

इदं(न्) ते नातपस्काय, नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं(न्), न च मां(म्) योऽभ्यसूयति॥18.67॥

यह सर्वगुह्यतम वचन तुझे अतपस्वी को नहीं कहना चाहिए; अभक्त को कभी नहीं कहना चाहिए तथा जो सुनना नहीं चाहता (उसको) नहीं कहना चाहिए और जो मुझमें दोषदृष्टि करता है, उसको भी नहीं कहना चाहिए।

विवेचन- जो मनुष्य कोई भी तप अथवा साधना करने को तैयार नहीं है, कोई भी कष्ट करने को तैयार नहीं है, केवल आलस्य में डूबा हुआ है उसको कभी नहीं बताना।

न अभक्ताय- जिसमें भक्ति का भाव ही नहीं है, सन्तों के प्रति प्रेम नहीं है, ईश्वर के प्रति भक्ति नहीं है, जो केवल स्वयं के अहङ्कार में

जीता है, ऐसे व्यक्ति को कभी मत बताना।

नचा सुश्रुषवे अर्थात् सुनने की इच्छा रखने वाला

अशुश्रुषवे अर्थात् जिसको सुनने की इच्छा नहीं है।

किसी को बलपूर्वक भगवद्गीता सुनाना नहीं- ये भगवद्गीता का नियम ध्यान में रखना। भगवद्गीता पढ़ने के लिए, सुनने के लिए, सीखने के लिए प्रवृत्त अवश्य करना, उनको अवश्य बताना। गीता परिवार में आकर आप गीता सीख सकते हो, समझ सकते हो किन्तु जबरदस्ती नहीं करनी है। बालकों पर थोड़ा अधिकार जमा सकते, बालकों को थोड़ा बता सकते हो कि तुम इसे पढ़ो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा। माता-पिता आग्रह से कहेंगे तो वो दोष नहीं है किन्तु जो व्यक्ति स्वयं को बड़ा समझने लगता है
और घने अहङ्कार में डूब जाता है ऐसे व्यक्ति को कभी नहीं बता सकते।

जिसको सुनने की इच्छा नहीं है उसको कभी सुनाना नहीं। अरे गीता में ऐसा बताया वैसा बताया कभी मत बताना।

न च मां योभ्यसूयति- जो इसमें दोष देखता है कि ऐसा करने से कुछ नहीं होता है, उसको कभी मत सुनाओ। भगवद्गीता स्वयं पढ़कर देखो तो पता चलता है इसलिए तो **'गीता पढ़ें, पढ़ाएं, जीवन में लाएं'-** ये जो त्रिसूत्री स्वामी जी ने बताई है उसे करके देखना है।

एक-दो दिन भगवान् की पूजा के भाव से अपने सारे कर्तव्य-कर्म करके देखिए तो आपको पता चल जाएगा कि क्या आनन्द मिलता है।

सुबह उठकर कर प्रणाम तेरे चरणों में, लगता हूँ अब तेरे काज।

पालन करने को आज्ञा, मैं नियुक्त होता हूँ आज।।

ऐसा भाव रखकर अपने काम-काज करने के लिए लग जाइए। मन ही मन में उसका स्मरण करते जाइए। भगवान! सुबह मैंने निश्चय किया था, सुबह आपको बताया था कि प्रत्येक कार्य करते समय, यह कार्य आपका है, इस भाव से मैं आज सारे कार्य करूँगा। यह कार्य हो गया; अब अगला आपका कार्य करने के लिए तैयार हूँ, तत्पर हूँ।
अब आपका अगला कार्य करता हूँ। ऐसा सोचकर जितनी बार स्मरण हो सके उतनी बार उनका स्मरण करते हुए एक-एक कार्य करते जाना और एक-एक कार्य होते ही

श्री कृष्णार्पणमस्तु।।

श्री रामचन्द्रर्पणमस्तु।।

श्रीगुरुरार्पणमस्तु।।

शिवार्पणमस्तु।।

गीतामातार्पणमस्तु।।

भारतमातार्पणमस्तु।।

हम परमात्मा को जिस भी रूप में देखना चाहते हैं, उसी रूप में उसको अर्पण कर दीजिये। देखिए, क्या अन्तर होता है किन्तु जो इसमें दोष देखता है, उसको कभी मत बताना। उसकी समझ में आएगा ही नहीं क्योंकि उस पर अभी भगवद्कृपा ही नहीं हुई है परन्तु ये बात किसको बताना?

जो इसको सुनने की इच्छा रखते हैं, उनको अवश्य बताना।

गीता पढ़ाने वाले को, गीता का प्रचार-प्रसार करने वाले को क्या मिलता है, यह अत्यन्त महत्वपूर्ण बात श्रीभगवान् बताते हैं।

18.68

य इमं(म्) परमं(ङ्) गुह्यं(म्), मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं(म्) मयि परां(ङ्) कृत्वा, मामेवैष्यत्यसंशयः॥18.68॥

मुझमें पराभक्ति करके जो इस परम गोपनीय संवाद (गीताग्रन्थ) को मेरे भक्तों में कहेगा, (वह) मुझे ही प्राप्त होगा - इसमें कोई सन्देह नहीं है।

विवेचन- ये जो परम गोपनीय बात मैंने तुम्हें बताई है, वह बात जो व्यक्ति मेरे उन भक्तों को अच्छे से बताता है जो ये सुनने की इच्छा रखते हैं, वह मेरी परम भक्ति करता है।

ये श्रीभगवान् की सर्वश्रेष्ठ भक्ति है और ऐसी परम भक्ति करके वह परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

'गीता किस लिए पढ़ानी है?

गीता पढ़ाने से क्या मिलेगा?

कुछ पैसे मिलेंगे क्या?

ऐसा विचार ही नहीं करना है। गीता पढ़ाने से परमात्मा की प्राप्ति होने वाली है। श्रीभगवान् के इसी वचन के कारण गीता परिवार में हजारों प्रशिक्षक, हजारों सेवी तथा प्रचारक गीता का कार्य कर रहे हैं। उन्हें श्रीभगवान् की परम भक्ति प्राप्त करनी है, श्रीभगवान् का परम प्रेम प्राप्त करना है, उन्हें कुछ नहीं चाहिए बस श्रीभगवान् चाहिए। जैसे अर्जुन ने माँगा कि भगवान्! मुझे आपकी नारायणी सेना नहीं चाहिए, आपके शस्त्र-अस्त्र नहीं चाहिए, मुझे केवल आप चाहिए।

आप निहत्थे होगे तो भी चलेगा, आप मुझे उपदेश कीजिए।

अर्जुन के माँगने पर श्रीभगवान् ने उन्हें यह दिया है
तो जिसको श्रीभगवान् छोड़कर अन्य और कुछ नहीं चाहिए, इस प्रकार से गीता का कार्य करने से उनको श्रीभगवान् प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए जितना अधिक से अधिक कर सकते हैं उतना गीता जी की सेवा करो, गीता का कार्य करो, प्रचार करो, गीता सिखाओ। यदि सिखा नहीं सकते हैं तो तकनीकी सहायता (technical support) का कार्य है। किसी भी कार्य को करने से यही लाभ होने वाला है क्योंकि श्रीभगवान् ने यही बताया है कि अपना धर्म, अपना कर्तव्य इसी प्रकार से करते जाना है। इतनी ही बात नहीं है। श्रीभगवान् आगे जो बात कह रहे हैं उसे एक बार सुनने से आपको यह विश्वास हो जाएगा कि ये कार्य करना ही चाहिए।

18.69

न च तस्मान्मनुष्येषु, कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्माद्, अन्यः(फ्) प्रियतरो भुवि॥18.69॥

उसके समान मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य करने वाला मनुष्यों में कोई भी नहीं है और इस भूमण्डल पर उसके समान मेरा दूसरा कोई प्रियतर होगा भी नहीं।

विवेचन- भुवि का अर्थ है इस भू-लोक में, इस सारे संसार में। श्रीभगवान् कह रहे हैं। "जो मेरा अनुकरण करने वाला है, उससे अधिक प्रिय मुझे और कोई नहीं है।"
हमें कौन प्रिय होता है?
जो हमारा बताया हुआ कार्य करता है, जो हमारी बात सुनता है वही हमें सबसे अधिक प्रिय होता है। यहाँ श्रीभगवान् कह रहे हैं कि मेरा सबसे प्रिय कार्य यदि कोई होगा तो गीता जी को सब व्यक्तियों तक पहुँचाने का कार्य है इसलिए उससे अधिक मेरा प्रिय कार्य कोई नहीं है। यह सबसे अधिक प्रिय कार्य है।

भविता का अर्थ है भविष्य काल में। ऐसा कोई भविष्यकाल में भी नहीं होगा। कितना बड़ा आश्वासन दे रहे हैं श्रीभगवान्!

गीता पढ़ें पढ़ाएँ, जीवन में लाएँ

यह त्रिसूत्री किसलिए करना है?
इससे हमें श्रीभगवान् का प्रेम प्राप्त होता है और प्रेम प्राप्त होने से क्या होता है, यह बताने की बात नहीं है। यह अनुभव की बात है। यह अनुभव आप सबको मिले, इसलिए मैं भगवत् चरणों में प्रार्थना करता हूँ। हम सब गीता जी के कार्य में किसी न किसी रूप में जुड़ जाएँ। यदि हम यह कर सकें तो श्रीभगवान् का सबसे अधिक प्रेम हम प्राप्त कर लेंगे और वह प्रेम हमें यह कार्य करते-करते ही अनुभव होने लगेगा।

अर्जुन सोचने लगे, "अरे! यहाँ तो आप पक्षपात कर रहे हैं। आप किसी को अधिक प्रिय समझते हैं, किसी को कम समझते हैं।" श्रीभगवान् कहते हैं, "ऐसा नहीं है रे!" आगे श्रीभगवान् कहते हैं-

18.70

अध्येष्यते च य इमं (न्), धर्म्यं (म्) संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहम्, इष्टः (स्) स्यामिति मे मतिः॥18.70॥

जो मनुष्य हम दोनों के इस धर्ममय संवाद का अध्ययन करेगा, उसके द्वारा भी मैं ज्ञानयज्ञ से पूजित होऊँगा - ऐसा मेरा मत है।

विवेचन- "जो कोई इसका अध्ययन भी करता है, इसको सीखने का प्रयास भी करता है, वह मेरा अत्यन्त इष्ट होगा। उसके द्वारा मेरी पूजा हो जाएगी।"

यहाँ श्रीश्रीभगवान् कह रहे हैं कि जो हम दोनों के मध्य के धर्म-संवाद अर्थात् हम दोनों के बीच चल रहे इस वार्तालाप का अध्ययन करता है, इसको पढ़ता है, इसको सीखने का प्रयास भी करता है, ज्ञान-यज्ञ करता है, ऐसा मानो कि उसके द्वारा मेरी पूजा हो जाएगी।

ज्ञान-यज्ञ हमने देखा है-

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।

चौथे अध्याय में श्रीभगवान् ने ज्ञान की महिमा बताते समय कहा था कि यह ज्ञानयज्ञ जो करता है या इसको समझने का प्रयास करता है, उसके सारे कर्मों की समाप्ति ज्ञान में होती है। यदि पढ़ना भी सम्भव नहीं है तो श्रीभगवान् कह रहे हैं-

18.71

श्रद्धावाननसूयश्च, शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः(श्)शुभाँल्लोकान्, प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्॥18.71॥

श्रद्धावान् और दोषदृष्टि से रहित जो मनुष्य इस (गीता-ग्रन्थ) को सुन भी लेगा, वह भी शरीर छूटने पर पुण्यकारियों के शुभ लोकों को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन- "श्रद्धायुक्त होकर अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीता पर श्रद्धा रखते हुए, उसमें दोष न देखकर, इसको जो केवल सुनता भी है, उसका ध्यान न होते हुए भी यदि उसके कान में कुछ अक्षर पड़ जाते हैं अर्थात् जो व्यक्ति इसको केवल सुन भी लेता है, वह भी मुक्त हो जाता है तथा उसे ऐसा श्रेष्ठ लोक प्राप्त होता है जहाँ से उसका आगे का योगाभ्यास चलता जाता है तथा अन्ततः वह

मुझे ही प्राप्त कर लेता है। पुण्य कर्म करने वाले पुण्यवान मनुष्यों के घर में उसको जन्म प्राप्त होता है तथा वहाँ से उसका आगे का अभ्यास होकर अन्ततोगत्वा उसको परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है।
अब तो सारी बातें बता दी गयीं। अब तो बताने के लिए कुछ भी शेष नहीं रहा। अभी तक अर्जुन श्रीभगवान् से सारे प्रश्न कर रहे थे। यहाँ श्रीभगवान् अर्जुन से एक प्रश्न पूछ रहे हैं।

18.72

कच्चिदेतच्छ्रुतं(म्) पार्थ, त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः(फ्), प्रनष्टस्ते धनञ्जय॥18.72॥

हे पृथानन्दन ! क्या तुमने एकाग्र-चित्त से इसको सुना? (और) हे धनञ्जय! क्या तुम्हारा अज्ञान से उत्पन्न मोह नष्ट हुआ ?

विवेचन- "अर्जुन! मैंने ये सारी बातें तुम्हें बतायीं तो तुमने ठीक से सुनी कि नहीं? कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम्हारा ध्यान कहीं इधर-उधर था?"
श्रीभगवान् अर्जुन से पूछ रहे हैं कि मैं इतनी सारी गुह्यतम बातें बता रहा हूँ, इतनी महत्त्वपूर्ण बातें तुम्हें बता रहा हूँ अर्जुन! तो तुमने ये सब एकाग्रचित्त होकर सुना है कि नहीं? अज्ञान के कारण जो तुम्हें मोह हो गया था, वह नष्ट हुआ कि नहीं? जिस प्रकार कक्षा में प्राध्यापक छात्रों से पूछते हैं कि जो मैं बोल रहा था, उस पर तुम्हारा ध्यान था कि नहीं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण तो जगद्गुरु हैं।

कृष्णम् वन्दे जगद्गुरुम्।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से केवल नष्ट नहीं कहा अपितु कहा है कि परिपूर्ण रूप से नष्ट हुआ कि नहीं, थोड़ा सा शेष है अभी भी? अभी कुछ पूछना शेष है अथवा क्या सारा स्पष्ट हो गया?

नौवें अध्याय तक जानने-सुनने के पश्चात् अर्जुन ने दसवें अध्याय में श्रीभगवान् से कहा है-

मोहोयं विगतो मम

'मेरा मोह अच्छे से चला गया' लेकिन चला गया तो पुनः आ सकता है और नष्ट हुआ तो वापस नहीं आ सकता। श्रीभगवान् ने यह नहीं पूछा कि तुम्हारा अज्ञान गया कि नहीं अपितु यह पूछा कि सारा अज्ञान परिपूर्ण रूप से नष्ट हुआ कि नहीं। हमारा अज्ञान भी पूर्ण नष्ट हो जाना चाहिए।

अब अर्जुन ने एक श्लोक में सारा स्पष्ट उत्तर दे दिया-

18.73

अर्जुन उवाच
नष्टो मोहः(स्) स्मृतिर्लब्धा, त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः(ख्), करिष्ये वचनं(न्) तव॥18.73॥

अर्जुन बोले - हे अच्युत ! आपकी कृपा से (मेरा) मोह नष्ट हो गया है (और) मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है। (मैं) सन्देह रहित होकर स्थित हूँ। (अब मैं) आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

विवेचन- "मेरा मोह तथा अज्ञान नष्ट हो गया। मुझे मेरी स्मृति प्राप्त हो गयी। मुझे मेरा स्मरण हो गया। मैं कौन हूँ? किस लिए यहाँ आया हूँ? यहाँ आकर मेरा क्या कर्त्तव्य है? सारी बातें मेरी समझ में आ गयी हैं।"

हमें अपना स्मरण नहीं है। हम कौन हैं? किस लिए यहाँ आए हैं? लेकिन गीता जी पढ़ने से हमें यह दिशा स्वतः प्राप्त होती है। हमें भी उन सभी प्रश्नों के उत्तर प्राप्त हो जाते हैं।

एक बार पढ़ने से नहीं होंगे तो दो बार पढ़ना। दो बार पढ़ने से नहीं होंगे तो तीन बार किन्तु यह पूर्ण मोह-अज्ञान नष्ट होने तक गीता जी का अध्ययन करते रहना है।

"यह मेरी बुद्धि नहीं है भगवान्। यह आपका प्रसाद मुझे प्राप्त हुआ है। आपकी कृपा मुझ पर हुई है।" धीरे-धीरे गीता जी थोड़ी-थोड़ी अन्तरङ्ग में उतरने लगती हैं। परिपूर्ण रूप से अर्जुन को जैसे समझ में आयीं, वैसे समझने के लिए पता नहीं कितने जन्म लगेंगे किन्तु उस पथ पर हम चलने लगेंगे तो हमें आनन्द प्राप्त होने लगेगा।

गीता जी का प्रारम्भ हुआ तब के अर्जुन कैसे थे? "मैं यह युद्ध नहीं करूँगा, मैं यह नहीं करूँगा, मैं वह नहीं करूँगा, मैं वन में जाकर रह लूँगा, भिक्षा माँग कर रह लूँगा- ऐसा कहने वाले अर्जुन अब अपना कर्तव्य करने के लिए तत्पर हो गये हैं, श्रीभगवान् के वचनों का पालन करने के लिए तत्पर हो गये हैं।

यह सारी बातें सञ्जय सुन रहे हैं। सञ्जय अपने मन के आनन्द को रोक नहीं पा रहे हैं। श्रीकृष्ण और अर्जुन का प्रत्यक्ष संवाद उनको सुनने को मिला है। वह अपना आनन्द व्यक्त करते हैं।

18.74

सञ्जय उवाच
इत्यहं(म्) वासुदेवस्य, पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषम्, अद्भुतं(म्) रोमहर्षणम्॥18.74॥

सञ्जय बोले - इस प्रकार मैंने भगवान् वासुदेव और महात्मा पृथानन्दन अर्जुन का यह रोमाञ्चित करने वाला अद्भुत संवाद सुना।

विवेचन- अब हम समाप्ति की ओर चल रहे हैं तो इति शब्द आएगा। सञ्जय कह रहे हैं, "श्रीभगवान् वासुदेव के पुत्र, श्रीकृष्ण का और महात्मा पार्थ (अर्जुन भी कोई सामान्य व्यक्ति नहीं हैं, वह भी एक महात्मा हैं जो श्रीभगवान् से प्रत्यक्ष रूप से गीता जी सुन रहे हैं।) दोनों के बीच हुआ यह संवाद मैंने सुना जो अद्भुत है। ऐसा कभी नहीं हुआ होगा और ऐसा कभी नहीं होगा। ऐसा अद्भुत संवाद सुनकर मेरे रोम-रोम हर्षित हो रहे हैं।"

यह संवाद हम सुनते हैं तब हम भी आनन्द की लहर अनुभव करते हैं। जब हम गीता जी पढ़ते हैं तो हमारे अन्तरङ्ग में भी आनन्द की लहर निर्माण होती है।

यह कहते ही सञ्जय को अपने सद्गुरु का स्मरण हो गया। सञ्जय को यह संवाद सुनने का अवसर कैसे प्राप्त हुआ है?
सञ्जय पर उनके सद्गुरु की कृपा हुई है। भगवान् वेदव्यास जी उसके गुरु हैं। वे कह रहे हैं, "भगवान् वेदव्यास जी की मुझ पर कृपा हो गयी। मेरे गुरु की मुझ पर कृपा हो गयी इसलिए उनकी कृपास्वरूप मुझे यह अद्भुत गुह्य संवाद साक्षात् सुनने का अवसर मिला। अरे! यह संवाद इतना अद्भुत है कि इसका प्रत्येक शब्द मुझे बार-बार याद आता है। बार-बार वे शब्द मेरे कानों में गूँज रहे हैं।"

वे धृतराष्ट्र से कह रहे हैं, "हे राजन! इस अद्भुत संवाद का बार-बार मुझे स्मरण हो रहा है। बार-बार वह याद आ रहा है और बार-बार मुझे हर्ष हो जाता है।
क्या याद आ रहा है?
सञ्जय धृतराष्ट्र को बताते हैं-

18.75

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवान्, एतद् गुह्यमहं(म्) परम्।
योगं(म्) योगेश्वरात्कृष्णात्, साक्षात्कथयतः(स्) स्वयम्॥75॥

व्यासजी की कृपा से मैंने स्वयं इस परम गोपनीय योग (गीता-ग्रन्थ) को कहते हुए साक्षात् योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण से सुना है।

विवेचन- भगवान् वेदव्यास जी की मुझ पर कृपा हो गई। मेरे गुरु
की मुझ पर कृपा हो गई इसलिए व्यास प्रसाद तथा उनकी कृपास्वरूप यह अद्भुत और गोपनीय संवाद सुनने का अवसर मुझे मिला भगवान् वेदव्यास जी के मेरे सद्गुरु की कृपा के कारण मुझे मिला।

परम गुह्य मैंने सुना और क्या सुना?

मैंने साक्षात् योगेश्वर कृष्ण को स्वयं योग के बारे में कहते हुए सुना और वह भी सीधा प्रसारण सुना। जैसे हम कहते हैं कि मैंने क्रिकेट का सीधा प्रसारण देखा है, उसी प्रकार श्रीभगवान् का यह संवाद सञ्जय साक्षात् सुन रहे हैं।

सञ्जय कहते हैं कि यह संवाद इतना अद्भुत है कि इसका प्रत्येक शब्द मुझे बार-बार याद आता है। बार-बार वो गीता के शब्द मेरे कानों में गूँज रहे हैं।

18.76

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य, संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः(फ्) पुण्यं(म्), हृष्यामि च मुहुर्मुहुः॥18.76॥

हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन के इस पवित्र और अद्भुत संवाद को याद कर-करके (मैं) बार-बार हर्षित हो रहा हूँ।

विवेचन- सञ्जय, धृतराष्ट्र से कह रहे हैं, " हे राजन! उस अद्भुत संवाद का स्मरण मुझे बार-बार हो रहा है, श्रीभगवान् के शब्द मेरे कानों में बार-बार गूञ्ज रहे हैं। केशव और अर्जुन के बीच का वो पुण्य पवित्र संवाद सुनकर मुझे हर्ष हो रहा है कि मैंने क्या सुना?

बार-बार वे शब्द मुझे सुनाई देते हैं, बार-बार मेरे कानों में वह शब्द गूञ्जते हैं और बार-बार मुझे हर्ष हो जाता है। मैं हर्ष में ही आह्लादित हूँ।

मराठी में कहते हैं-

आनन्दाच्या उकल्या फुटणे।
अर्थात् हर्ष की लहर, तरङ्ग मेरे अन्तरङ्ग से आ रही है। और वो आनन्द मैं ले रहा हूँ और मुझे कुछ और याद आ रहा है।

क्या याद आ रहा है?

यह धृतराष्ट्र को सञ्जय बताते हैं-

18.77

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य, रूपमत्यद्भुतं(म्) हरेः।
विस्मयो मे महान् राजन्, हृष्यामि च पुनः(फ्) पुनः॥18.77॥

जहाँ योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण हैं (और) जहाँ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं, वहाँ ही श्री, विजय, विभूति (और) अचल नीति है - (ऐसा) मेरा मत है।

विवेचन- सञ्जय बताते हैं, "हे राजन! एक और बात मुझे बार-बार
याद आ रही है। श्रीभगवान का अद्‌भुत रूप मैंने देखा, जो अर्जुन को जो दर्शन हुआ उसी विश्वरूप का दर्शन मुझे हो गया। मेरे सद्‌गुरु की मुझ पर ऐसी कुछ कृपा हो गई कि वो मुझे साक्षात् देखने को मिल गया, केवल सुनने को नहीं। श्रीभगवान का विश्वरूप मुझे देखने को भी मिल गया। उसका भी मुझे बार-बार स्मरण हो रहा है। सारा विश्व उसने व्याप्त कर लिया है। ऐसा वो या सारा विश्व उस कृष्ण में समाया हुआ है। ऐसा जो रूप मैंने देखा ना वो अद्‌भुत रूप है और उसका जो विस्मय-आश्चर्य मुझे हुआ है कि भगवान् का विश्वरूप मुझे देखने को मिला। बार-बार मुझे हर्ष हो रहा है। मुझे इतना हर्ष हो रहा है कि मैं इसका वर्णन ही नहीं कर सकता।"

यहाँ आगे धृतराष्ट्र का श्लोक नहीं है। धृतराष्ट्र ने कुछ नहीं कहा है किन्तु अब संजय भी इस अवस्था में आ गये हैं कि **धृतराष्ट्र के मन में क्या चल रहा है**- इसे जान ले। धृतराष्ट्र के मन में यही विचार है कि अरे ये सब बातें छोड़ो। धृतराष्ट्र को इसमें से किसी भी बात में रूचि नहीं है। उसकी रूचि मात्र यही है कि जीतेगा कौन?

"मुझे बताओ मेरा पुत्र जीतेगा कि नहीं" धृतराष्ट्र पूछता नहीं है किन्तु सञ्जय की ये बातें सुनकर कि मुझे हर्ष हो रहा है, मुझे हर्ष हो रहा है, धृतराष्ट्र को लगता है कि कोई मुझे बताओ कि मेरे पुत्र का क्या होगा, उसकी जीत होगी कि नहीं?

अब तो सञ्जय भी स्पष्ट हैं क्योंकि उन्हें अब भगवत् प्रसाद प्राप्त हुआ है। वो कहते हैं कि मैं सच ही कहूँगा, मैं झूठ नहीं कहूँगा।

18.78

यत्र योगेश्वरः(ख्) कृष्णो, यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिः(र्), ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥18.78॥

विवेचन- सञ्जय को इतना धैर्य प्राप्त हो गया है कि वो राजा के सामने बैठकर, राजा से कह रहे हैं कि अरे तुम्हारा पुत्र नहीं, अर्जुन विजयी होने वाला है। मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि वह अर्जुन ही विजयी होने वाला है क्योंकि जहाँ पर साक्षात् योगेश्वर, श्रीकृष्ण का रूप धारण करके बैठे हैं और उनकी बात धनुर्धारी अर्जुन सुन रहे हैं।

ये वो अर्जुन अब नहीं है जो धनुष-बाण का त्याग करके, रोते हुए रथ में जाकर पीछे बैठ गया था। अब यह अर्जुन है धनुरधारी जिसने अपने हाथ में धनुष उठाया हुआ है।

"भगवान आपकी बात सुनूँगा।" ऐसा कहने वाला अर्जुन जहाँ पर है और उसको मार्ग दिखाने वाले श्रीभगवान् जहाँ पर हैं, वहीं पर श्री है, लक्ष्मी है, सम्पन्नता है, वहीं पर विजय है।

विजय उसी की होगी जिसके साथ योगेश्वर हैं और ये केवल योगेश्वर
नहीं हैं। योगेश्वर कुछ करने वाले नहीं है अपितु मात्र मार्ग दिखाने वाले हैं। शास्त्र हमें मार्ग दिखाते हैं।

गीताशास्त्रमिदं पुण्यम्-
ये गीता शास्त्र है। ये हमें मार्ग दिखाता है कि कैसे चलना है? कहाँ जाना है? भगवान् श्रीकृष्ण हमें बताते हैं कि चलना जीव को ही है और इसलिए उनकी बात सुनने वाला जीव अर्थात् पार्थ, धनुर्धारी पार्थ, '**करिष्ये वचन तव**' कहने वाला पार्थ, वो अर्जुन जहाँ पर है, वहाँ पर ही विजय सुनिश्चित है।

ये सारी विभूतियाँ- **तत्र श्रीः, विजयाः भूति**- ये वहीं पर होंगी।

ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम- यह मेरी ध्रुव नीति है। ये मेरा पक्का कहना है, मान्यता है तथा मत है कि विजय उन्हीं की होने वाली है। ये भगवद्गीता का सबसे आश्वासक श्लोक है। अर्जुन के साथ भगवान् श्रीकृष्ण हैं किन्तु हमारा कैसे होगा? भगवान् श्रीकृष्ण, अर्जुन के साथ हैं इसलिए उनकी विजय सुनिश्चित है। हमारी विजय कैसे होगी?

भगवान् श्रीकृष्ण अर्थात् स्वस्थ मस्तिष्क

(mind-fitness)। भगवान् श्रीकृष्ण आत्मविश्वास हैं। ये ज्ञान अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण हैं और उस ज्ञान पर चलने वाला पार्थ अर्थात् वो जीव है।

अर्जुन को उपदेश करने के लिए साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण सदेह उपलब्ध हैं अर्थात् देह के साथ अर्जुन के साथ में हैं। हमारे साथ भी भगवान् श्रीकृष्ण हैं। भगवद्गीता, उनसे भिन्न नहीं है। जयतु जयतु गीता वाङ्मय कृष्णमूर्ति।

वाङ्मय के रूप में साक्षात् भगवान् श्री कृष्ण है। ये अक्षर नहीं है, ये भगवान् श्री कृष्ण हैं। ये केवल शब्द नहीं है, ये केवल पुस्तक नहीं है, ये साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण हैं। इस बात को ध्यान में रखिएगा इसलिए आग्रह किया जाता है कि गीता को कण्ठस्थ कर लो, गीता को हृदयस्थ कर लो। इन शब्दों को अपने अन्तरङ्ग में बैठाकर रखेंगे तो साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण शब्द के रूप में हमारे भीतर रह जाएँगे और हमारी बागडोर वो सम्भाल लेंगे। हमें मार्गदर्शन वो करेंगे।

अन्तर में स्थित रहकर मेरी बागडोर पकड़े रहना।

निपट निरंकुश चंचल मन को सावधान करते रहना।

अन्तर्यामी को अन्तस्थित देख सशंकित होवे मन।

पाप वासना उठते ही हो नाश लाज से वह जल-भुन।

अन्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्ण गीता के रूप में यदि हमारे अन्तरङ्ग में एक बार आकर बस गए तो पापी विचार मन में आते ही मन को भी लाज आ जाएगी कि मैं कैसे विचार कर रहा हूँ। श्रीभगवान् मेरे साथ बैठे हुए हैं। पाप वासना उठते ही वो हमें अपने आप मार्ग दिखाते जायेंगे। अपने मन व बुद्धि को श्रीभगवान् के हाथ में, भगवद्गीता के हाथ में सौंप देना।

गीता माँ हमें मार्ग दिखाओ। हमें समझ में नहीं आता कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए?

हम अज्ञान में पड़े हुए हैं। ऐसी गीता मैया की शरण में हम जाएंगे तो गीता मैया हमें निश्चित रूप से मार्ग दिखाएँगी।

जो गीता के दिखाए हुए मार्ग पर चलता जाएगा उसकी विजय सुनिश्चित है। वो जितना भी बड़ा ध्येय लेकर चले, उसको प्राप्ति निश्चित है। यह भगवद्गीता का सबसे अन्तिम सन्देश है। यहाँ पर इसकी घोषणा सञ्जय ने की है, जिन्होने साक्षात् गीता सुनी है।

इस प्रकार से हमारे जीवन में गीता जी का प्रवेश हो चुका है। अब उनको हमारे हृदय में बसाकर रखना और उनके दिखाए हुए मार्ग पर चलते जाना, ये हमारा कर्तव्य है। हम इस मार्ग पर चलते जाएँगे तो हमारी विजय सुनिश्चित है। इसमें कोई दो राय अथवा शङ्का रखने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ पर सम्पूर्ण भगवद्गीता का अभ्यास पूर्ण हो जाता है। जो भी अभ्यास हमने किया है, जो भी चिन्तन हमने किया है, उसमें कुछ गलतियाँ हुई होंगी, दोष रह गए होंगे किन्तु श्रीभगवान् की कृपा ऐसी है कि उसके अनुसन्धान में किया हुआ हर कार्य, सत्कार्य हो जाता है। उसी के चरणों में अर्पण कर देंगे तो वो कार्य पुण्य कार्य हो जाता है इसलिए हमारा यह सारा अध्ययन ये सारा चिन्तन उसी के चरणों में अर्पण करते हुए मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- स्नेहलता दीदी

प्रश्न- चौहत्तरवें श्लोक का अर्थ पुनः समझा दीजिए।

उत्तर-

सञ्जय उवाच

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।

संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम्।।18.74।।

अर्थात् इस प्रकार मैंने वासुदेव और अर्जुन का अद्भभुत रोम हर्षक संवाद सुना।

प्रश्नकर्ता- अशोक भैया

प्रश्न- भगवद्गीता को कैसे और किसने रिकॉर्ड किया अथवा लिखा?

उत्तर- भगवद्गीता श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कही। धृतराष्ट्र दृष्टिहीन थे और वे युद्ध भूमि का वर्णन सुनना चाहते थे इसलिए सञ्जय की नियुक्ति की गई। सञ्जय को भगवान् वेदव्यास जी द्वारा दिव्य दृष्टि प्रदान की गई थी। जिससे सञ्जय युद्ध भूमि में जाए बिना ही वहाँ क्या हो रहा है उसे देख और सुन सकते थे।

भगवान् वेदव्यास ने भगवद्गीता और सम्पूर्ण महाभारत (लगभग एक लाख श्लोक) को श्लोक बद्ध कर वर्तमान स्वरूप में हम तक पहुँचाया है।

प्रश्नकर्ता- अनुराधा दीदी

प्रश्न- क्या पहले अठारहवाँ अध्याय कण्ठस्थ करके बाद में अन्य अध्याय याद कर सकते हैं?

उत्तर- आप कहीं से भी प्रारम्भ कर सकते हो। सरल व्यवस्था गीता परिवार ने दी हुई है। पहले बारहवें से प्रारम्भ किया जाता है

।।ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसन्न्यासयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'मोक्षसन्यासयोग' नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||